THE ECONOMIC TIMES

Date: 26-03-26

India's Shiny New Habit Needs Polish

Digital gold needs independent regulation

ET Editorial

Young Indians have taken a shine to digital gold that allows them to buy the metal in tiny amounts on their smartphones. Gold sold by fintech firms is not as tightly regulated as gold ETFs or sovereign gold bonds (SGBs), so its popularity has increased the urgency for stronger custody and audit monitoring. The industry is regulating itself and has sought Gol's help with oversight, which should prop up digital gold transaction volumes. Convenience of buying small amounts of gold all through the year has enormous scope to alter consumer behaviour. Most gold micro-savers are below 35, and their preferences could become mainstream as the cohort expands.

Before their recent retracement (about *14.7 per g in India on Wednesday), gold prices had rallied due to geopolitical uncertainty and had squeezed demand for traditional jewellery. Surging safe-haven demand for bullion has made the larger ticket size of jewellery unaffordable for many. Besides, jewellery sales are seasonal, which bunches up demand. Digital gold provides an alternative distribution channel without these legacy limitations. Beyond these, however, the habit of buying small amounts could help wean Indians off their obsession with gold as they are exposed to a wide array of financial savings options. Investor choice ought to improve if it is as convenient to buy gold as it is to buy stocks or bonds. India's energetic fintechs have products to cater to all tastes among retail investors.

Rules for digital gold under consideration will seek to enhance disclosure over vault practices through third-party audits. Digital gold must be backed by physical gold. Bullion holdings must not be hedged or held as reserves. Custody receipts must ensure gold remains allocated to the customer irrespective of the distributor. Independent inventory audits, vault security standards and insured storage are other aspects that need to be harmonised. Digital gold is a business model in search of regulation. Gol must deliver on the industry's legitimate expectations.

दैनिक भास्कर

Date: 26-03-26

एथेनॉल हमें तेल - संकट से राहत दिला सकता है

संपादकीय

देश की 1800 करोड़ लीटर एथेनॉल बनाने की वर्तमान क्षमता तेल- संकट से राहत दिला सकती है। भारत में एथेनॉल मक्का, चावल, गन्ने के रस और मोलेसेस (दो किस्म) से बनता है। ब्राजील दशकों पहले पेट्रोल में 30% एथेनॉल मिलाकर और केन्या एथेनॉल एटीएम बनाकर कुकिंग ईंधन संकट से बचने का रास्ता दिखा चुका है। भारत अपने परिवहन के लिए पेट्रोल में 20% एथेनॉल ब्लेंडिंग (करीब 900 करोड़ लीटर) कर रहा है, जिसे 30% करने पर 400-500 करोड़ लीटर एथेनॉल की और जरूरत पड़ेगी। इसका लाभ यह होगा कि किसान का मक्का एथेनॉल बनाने के काम आएगा, यानी फसल विविधीकरण संभव हो सकेगा। खबर है कि नए चूल्हे बनाने पर शोध का काम कई संस्थाएं कर रही हैं। एथेनॉल एलपीजी से ज्यादा सुरक्षित और सस्ता है। विशेषज्ञों के अनुसार भारत पेट्रोल की जगह शत प्रतिशत एथेनॉल (ई-100) पर भी जा सकता है और इसके लिए वर्तमान पेट्रोल पम्पों पर ही अलग से हाइड्रस (सजल) इकाई बनाई जा सकती है। वाहन यूजर्स कीमत देखकर दोनों विकल्पों में से कोई एक चुन सकते हैं। इसमें दो राय नहीं कि पिछले दो दशकों से भारत खाद्यान में न केवल आत्मनिर्भर हुआ है बल्कि उलटे अति-उत्पादन एक नया सिरदर्द बन गया है। चावल और गेहूं चूंकि मजबूत फसल हैं इसलिए किसान भारी खाद-पानी खर्च करके भी इनका उत्पादन कर रहा है। खंडा चावल का सबसे अच्छा विकल्प एथेनॉल बनाना ही है। हमारे यहां मक्का भी प्रचुर मात्रा में होता है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 26-03-26

ईंधन की आत्मनिर्भरता

संपादकीय

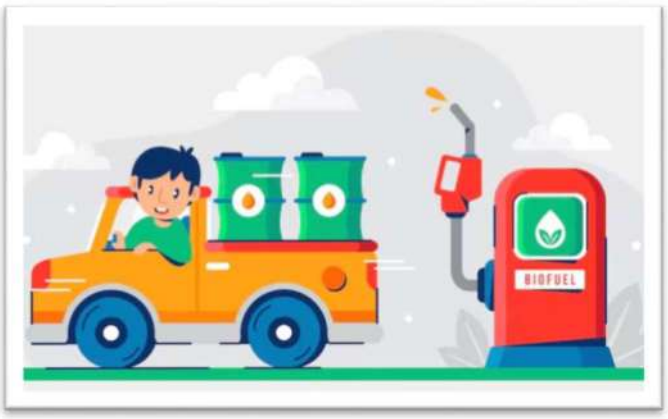

अमेरिकी प्रशासन ने ईरान के साथ दुश्मनी खत्म करने के लिए 15 बिंदुओं वाला एक एजेंडा भेजा है। इसे लेकर तेल और गैस बाजारों ने आशावादी प्रतिक्रिया दी है। इस खबर के सामने आने के बाद ईरान के अधिकारियों ने जो बयान दिए हैं उसने इन उम्मीदों में और इजाफा किया है। उन्होंने कहा है कि वे गैर दुश्मन मुल्कों के जहाजों को होर्मुज स्ट्रेट से गुजरने देंगे बशर्ते वे ईरान से संपर्क बनाए रखें और इसकी इजाजत हासिल करें। यह समझना आसान है कि इन संकेतों को खाड़ी में हफ्तों से जारी संकट के अंत और जीवाश्म ईंधन बाजार में सामान्य हालात की वापसी के रूप में देखा जा रहा लेकिन अमेरिका ईरान और इजरायल से जुड़े सभी पक्षों के अप्रत्याशित स्वभाव को देखते हुए यह अपेक्षा करना शायद कुछ ज्यादा ही होगा। ठोस ढंग से कहें तो भारत को आने वाले समय में आयातित ऊर्जा के लिए अपेक्षा से अधिक कीमतें चुकानी पड़ सकती हैं।

कारोबारी मार्गों को हथियार के रूप में इस्तेमाल करने का एक असर यह हुआ है कि कुछ बाजार जो पहले वैश्विक स्वरूप में थे मसलन कच्चे तेल का बाजार आदि, अब उनकी क्षेत्रीय कीमतों में भारी उतार-चढ़ाव नजर आ रहा है। उदाहरण के लिए भारत के लिए खाड़ी क्षेत्र का तेल मूल्य टेक्सस या उत्तरी सागर के तेल कीमतों की तुलना में कहीं अधिक मायने रखता है। कुछ अनुमानों के अनुसार, आने वाले कुछ महीनों के बड़े हिस्से में इंडियन बास्केट कच्चे तेल की कीमत पिछले कई महीनों की तुलना में लगभग दोगुनी हो सकती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि ऐसा होता है तो आम परिवारों और सरकार दोनों की वित्तीय स्थिति पर भारी दबाव पड़ेगा।

भारत की राजनीतिक अर्थव्यवस्था में ऊर्जा की कीमतों में तेज उछाल से संकट पैदा होने का खतरा नया नहीं है। ऐसा पहले भी हो चुका है। हम 2013 में, 1999 में और उससे पहले भी ऐसे हालात झेल चुके हैं। इससे निपटने के लिए अधिक ऊर्जा आत्मनिर्भरता ही एकमात्र उपाय है लेकिन उसे तत्काल लागू नहीं किया जा सकता है। हालांकि, वर्तमान सरकार के पास ऐसा करने के लिए एक दशक से अधिक का समय रहा है। साल 2014 में सत्ता में आने के बाद से इसे अपेक्षाकृत लंबे समय तक प्रबंधनीय ऊर्जा कीमतों का लाभ मिला। इस अवधि में ऊर्जा आत्मनिर्भरता की दिशा में कुछ कदम उठाए गए जैसे नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता के महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य। लेकिन मौजूदा परिस्थितियों में नवीकरणीय ऊर्जा जीवाश्म ईंधन का पर्याप्त विकल्प नहीं है, विशेषकर बिजली की बेस लोड आवश्यकता के लिए, और आने वाले कई वर्षों

तक भी नहीं होगी। इसलिए तेल और गैस की घरेलू खोज, उत्पादन और प्रसंस्करण बढ़ाने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

दुर्भाग्यवश इस अहम मानक पर सरकार पीछे रह गई है। उत्खनन नीति में कुछ अग्रगामी बदलावों के प्रयासों के बावजूद उत्पादन 2014 के बाद से 30 फीसदी कम हुआ है। यह तब है जबकि घरेलू मांग में लगातार इजाफा हुआ है। 2016 में नई उत्खनन और लाइसेंसिंग नीति की शुरुआत ने न तो उत्पादन में ठोस वृद्धि की और न ही व्यावसायिक रुचि आकर्षित की। उत्पादन साझेदारी को राजस्व साझेदारी से बदल दिया गया, लेकिन इसका अर्थ यह हुआ कि कंपनियों को परियोजना की समय-सीमा में बहुत बाद में राजस्व प्राप्त होता। इससे उनकी रुचि कम हो गई। नए खुले क्षेत्रों के लिए डेटा कवरेज बहुत कम रहा और मूल्य अस्थिरता बनी रही। इस बीच ब्राजील ने भूवैज्ञानिक डेटा में निवेश करके उत्खनन का स्तर दो से तीन गुना बढ़ा लिया है। भारत को स्पष्ट रूप से अधिक मेहनत करनी होगी और अन्य देशों की सफलताओं से सीखना होगा। यह संकट या कहें संकट का खतरा आत्मनिर्भरता बढ़ाने के अवसर के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

Date: 26-03-26

डब्ल्यूटीओ सम्मेलन: मतभेद ज्यादा, उम्मीदें कम

अजय श्रीवास्तव, (लेखक जीटीआरआई के संस्थापक हैं)

विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के 14वें मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (एमसी 14) के लिए 166 देशों के व्यापार मंत्री 26 से 29 मार्च तक कैमरून के याउंडे में मिल रहे हैं। यह सम्मेलन वैश्विक व्यापार नियमों के लिए प्राथमिकता तय करने और उन पर बातचीत करने के लिए संगठन का सर्वोच्च मंच है।

वैश्विक व्यापार के 98 फीसदी हिस्से (35 लाख करोड़ डॉलर से अधिक मूल्य) को नियंत्रित करने वाली संस्था से इस बार उम्मीदें कम हैं, क्योंकि इसकी दिशा को लेकर गहरे मतभेद हैं। भारत, दक्षिण अफ्रीका और ब्राजील के नेतृत्व में एक समूह आम सहमति, समावेशिता और विकास एवं व्यापार के बीच संतुलन बनाए रखना चाहता है। दूसरी ओर विकसित देशों के नेतृत्व में दूसरा समूह त्वरित निर्णय और छोटे समूह समझौतों पर जोर दे रहा है, जो अक्सर डब्ल्यूटीओ के मूल सिद्धांतों की कीमत पर होता है। पहला समूह चेतावनी देता है कि यह बदलाव डब्ल्यूटीओ की बहुपक्षीय नींव को कमजोर कर सकता है और विकास संबंधी चिंताओं को दरकिनार कर सकता है, प्रभावी रूप से उस सीढ़ी को हटा सकता है जिसने कभी समृद्ध देशों के औद्योगीकरण में मदद की थी। यह मतभेद डब्ल्यूटीओ वार्ताओं में अधिकांश असहमति का मूल कारण है।

सम्मेलन के छह प्रमुख मुद्दे और उनके संभावित परिणाम इस प्रकार हैं : कृषिः यह भारत के डब्ल्यूटीओ एजेंडा का प्रमुख हिस्सा बना हुआ है, जिसमें खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक भंडार को डब्ल्यूटीओ के अनुरूप मानने की प्रमुख मांग शामिल है। मुख्य समस्या डब्ल्यूटीओ के दोषपूर्ण सब्सिडी फॉर्मूले में निहित है, जो 1986-88 की संदर्भ कीमतों का उपयोग करता है और भारत के समर्थन अनुमानों को सात से आठ गुना बढ़ा देता है, जिससे यह कृत्रिम रूप से सीमा

उल्लंघन के करीब पहुंच जाता है। अमेरिका और यूरोपीय संघ इस फॉर्मूले में संशोधन करने में रुचि नहीं रखते और व्यापार विकृति के जोखिमों का हवाला देते हुए व्यापक छूटों का विरोध करते हैं, जिसके चलते भारत के पास 2013 से केवल एक अस्थायी 'शांति खंड' ही बचा है। कुछ देशों द्वारा पिछली प्रतिबद्धताओं को फिर से खोलने की कोशिश और मतभेदों के चलते, सम्मेलन में किसी सफलता की संभावना बहुत कम है।

ई-कॉमर्स पर छूट : इस पर पहली बार 1998 में सहमति बनी। यह इलेक्ट्रॉनिक ट्रांसमिशन, जैसे डाउनलोड और डिजिटल सामग्री पर सीमा शुल्क को प्रतिबंधित करता है। अमेरिका के नेतृत्व में विकसित देश इसे स्थायी बनाना चाहते हैं, ताकि वैश्विक अर्थव्यवस्था के डेटा और सेवाओं की ओर बढ़ने के साथ-साथ शुल्क - मुक्त डिजिटल सुनिश्चित हो सके। आर्टिफिशल इंटेलिजेंस के बल पर डिजिटल अर्थव्यवस्था के आज के लगभग 16 लाख करोड़ डॉलर से बढ़कर अगले दो दशकों में लगभग 50 लाख करोड़ डॉलर होने का अनुमान है। इलेक्ट्रॉनिक ट्रांसमिशन के लिए यह सीमा शुल्क मुक्त व्यवस्था मुख्य रूप से उन अमेरिकी प्रौद्योगिकी कंपनियों को लाभ पहुंचाती है जो सीमा पार डिजिटल व्यापार पर हावी हैं।

भारत और अन्य विकासशील देशों का तर्क है कि व्यापार के भौतिक वस्तुओं से डिजिटल प्रारूपों में स्थानांतरित होने के कारण यह स्थगन उनके भविष्य के कर आधार को कमजोर करता है। वे इसके दायरे पर भी सवाल उठाते हैं। अधिकांश विकासशील देशों का मानना है कि डिजिटल रूप से प्रदान की जाने वाली सेवाएं इस स्थगन से बाहर हैं, जबकि अमेरिका और उसके सहयोगी इन्हें इसमें शामिल करना चाहते हैं।

सम्मेलन में इस पर एक और अस्थायी विस्तार होने की संभावना है, जिससे असहज समझौते को बरकरार रखा जा सके।

बहुपक्षीय समझौते : ये समझौते डब्ल्यूटीओ के लिए एक प्रणालीगत चुनौती के रूप में उभर रहे हैं। भारत इनका विरोध करता है । उसका तर्क है कि ये कुछ देशों को ऐसे समझौते करने की अनुमति देकर सर्वसम्मति - आधारित नियम निर्माण को कमजोर करते हैं जिन्हें बाद में डब्ल्यूटीओ में लाया जाता है। इससे विकसित अर्थव्यवस्थाएं विकासशील देशों के लिए महत्त्वपूर्ण मुद्दों, जैसे कृषि सब्सिडी और विशेष एवं भेदभावपूर्ण व्यवहार, को नजरअंदाज करते हुए अपनी प्राथमिकताओं को आगे बढ़ा सकती हैं, जिससे कुछ देशों के प्रभुत्व वाली दो-स्तरीय प्रणाली का खतरा पैदा हो सकता है।

सम्मेलन में भारत पर विकास के लिए निवेश सुविधा (आईएफडी) समझौते का विरोध न करने का दबाव हैं, जो अधिक बहुपक्षीय समझौतों को अपनाने के लिए एक मिसाल कायम कर सकता है । इससे पहले के सम्मेलन में भारत को दक्षिण अफ्रीका का साथ मिला था लेकिन अब भारत अकेला पड़ सकता है क्योंकि चीन की बेल्ट ऐंड रोड पहल से जुड़े अन्य अफ्रीकी देशों के दबाव में दक्षिण अफ्रीका का रुख बदलता दिख रहा है।

विशेष एवं विभेदक व्यवहार (एसडीटी) : इस पर बहस डब्ल्यूटीओ में मौजूद एक गहरी दरार को उजागर करती है। विकासशील देशों ने 1995 में बौद्धिक संपदा और सेवाओं पर कड़े नियमों को स्वीकार किया था, जिसके बदले उन्हें संक्रमण काल की लंबी अवधि और नीतिगत स्वतंत्रता जैसी लचीली व्यवस्थाएं मिली थीं। अब यह समझौता तनाव में है। अमेरिका और यूरोपीय संघ का तर्क है कि बड़ी उभरती अर्थव्यवस्थाओं को अब ऐसे लाभ नहीं मिलने चाहिए और वे चाहते हैं कि एसडीटी मुख्य रूप से सबसे कम विकसित देशों तक ही सीमित रहे । भारत का कहना है कि विकास में अंतर अभी भी बहुत अधिक है और मूल समझौते पर पुनर्विचार किए बिना एसडीटी को हटाने से व्यवस्था और भी

अधिक असमान हो जाएगी। यह विवाद निष्पक्षता और वैधता के मूल में है, और इस बार के सम्मेलन में इसका कोई समाधान संभव नहीं लगता है ।

डब्ल्यूटीओ की विवाद निपटान प्रणाली : कभी इसका सबसे मजबूत स्तंभ रही यह प्रणाली अब कमजोर हो चुकी है। अमेरिका द्वारा नए सदस्यों की नियुक्ति पर रोक लगाने के बाद दिसंबर 2019 से अपील निकाय निष्क्रिय पड़ा है। हालांकि पैनल फैसले जारी करते रहते हैं, लेकिन अपीलें निरर्थक बनी रहती हैं, जिससे अंतिम निर्णय लेने में बाधा आती है और प्रवर्तन कमजोर हो जाता है। अंतरिम व्यवस्थाएं मौजूद हैं, लेकिन वे आंशिक और खंडित हैं। भारत पूर्णतः कार्यशील दो स्तरीय प्रणाली को बहाल करने का समर्थन करता है, लेकिन सुधारों पर व्यापक अस अभी भी अनसुलझी है। सम्मेलन से इसमें कोई बदलाव आने की संभावना नहीं है।

निर्णय लेने की प्रक्रिया में सुधार : यह भी उतना ही विवादास्पद मुद्दा है। विकसित देश तर्क देते हैं कि सर्वसम्मति का सिद्धांत प्रगति को धीमा करता है और वे अधिक लचीले दृष्टिकोणों की वकालत करते हैं, जिसमें बहुपक्षीय संगठनों पर अधिक निर्भरता शामिल है। भारत और अन्य देश सर्वसम्मति को इस प्रणाली की नींव मानते हैं, जो यह सुनिश्चित करती है कि सभी सदस्य देशों, चाहे वे बड़े हों या छोटे, उनको समान अधिकार प्राप्त हों। इसे कमजोर करने से शक्ति प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं की ओर स्थानांतरित हो जाएगी और डब्ल्यूटीओ के विकास संबंधी आयाम कमजोर हो जाएंगे। इस मुद्दे पर भी चर्चा बिना किसी समाधान के जारी रहेगी।

सम्मेलन में सबसे संभावित परिणाम निरंतरता ही हो सकती है, न कि कोई क्रांतिकारी बदलाव | सत्र का विस्तार और अधिक वार्ताएं हो सकती हैं तथा कुछ ही निर्णय लिए जा सकते हैं। भारत के लिए नीतिगत स्वतंत्रता को बनाए रखने और तेजी से विभाजित हो रही व्यवस्था में प्रभावी गठबंधन का निर्माण करने की चुनौती होगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 26-03-26

एकध्रुवीय विश्व का भ्रम टूट गया

जोरावर दौलत सिंह, (इतिहासकार और रणनीतिकार)

ईरान के खिलाफ जारी अंतहीन युद्ध को अब विश्व व्यवस्था में एक निर्णायक मोड़ के प में देखा जा रहा है। अमेरिका से आखिर इतनी बड़ी गलती हुई कैसे ? वास्तव में, संघर्ष में उतरने से पहले तेहरान को लेकर वाशिंगटन की तीन महत्वपूर्ण धारणाएं थीं।

पहली, व्हाइट हाउस का मानना था कि बेशक एकध्रुवीय व्यवस्था का चरम-काल बीत चुका है, फिर भी विश्व शक्ति संतुलन उसके अनुकूल है, क्योंकि उसके प्रतिद्वंद्वी या तो अन्य संघर्षों में उलझे हुए हैं (जैसे- रूस यूक्रेन के साथ) या

घरेलू व क्षेत्रीय मामलों में मुब्तिला हैं (जैसे-चीन पूर्वी एशिया में) । वेनेजुएला में जिस आसानी से उसने सफलता पाई थी, उससे भी उसे खुद के सर्वशक्तिमान होने का विश्वास था । उसे लगा कि अलग-थलग पड़े ईरान को कुचलने का यह सुनहरा अवसर है।

दूसरी, ईरान में सत्ता परिवर्तन के लिए व्यापक बमबारी को पर्याप्त माना गया। यह उस अमेरिकी सिद्धांत के अनुकूल था, जिसके तहत वह लक्षित देश के नेतृत्व और उसके कमान व नियंत्रण केंद्रों को पूरी तरह से खत्म कर देता है। यह अवधारणा पश्चिमी युद्ध रणनीति का अभिन्न हिस्सा रही है। इसमें तीव्रता से की गई सैन्य कार्रवाई से दुश्मन को झटका लगता है और वह तुरंत पीछे हट जाता है या आत्मसमर्पण कर देता है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद से जमीनी जंग के खिलाफ घरेलू दबाव और लॉजिस्टिक मुश्किलों के कारण विनाशकारी बमबारी अभियान के प्रति अमेरिका का आकर्षण बढ़ा है।

तीसरी, अमेरिका का मानना था कि उसके ताकतवर सहयोगी देश युद्ध का भार उठाने में मदद करेंगे। पश्चिम एशिया में युद्ध को आगे बढ़ाने के लिए वह अन्य मोर्चों युद्ध से संसाधनों व सैन्य उपकरणों को इधर-उधर कर सकता था। इतना ही नहीं, अमेरिका के क्षेत्रीय सहयोगियों को भी एक संपत्ति के तौर पर देखा गया, जिनके पास कई जगहों पर फैले ठिकाने थे। इनका इस्तेमाल एक ऐसी सैन्य कार्रवाई के लिए हो सकता था, जो ईरान को पछाड़ दे और उसकी जवाबी कार्रवाई को मुश्किल बना दे।

इन तीनों धारणाणों को लेकर अमेरिका कितना गलत था, यह अब स्पष्ट हो गया है। ईरान अकेला नहीं था और जून 2025 में 12 दिनों के संघर्ष के बाद उसके रणनीतिक सहयोगी देशों ने उसकी सैन्य तैयारियों को आगे बढ़ाने में मदद की है। निस्संदेह, बमबारी से अमेरिका को सामरिक सफलताएं मिलीं, लेकिन वह वहां की राजनीतिक व्यवस्था, महत्वपूर्ण संस्थाओं और ईरानी जनता के संकल्प को तोड़ पाने में विफल रहा है।

दूसरी बात, इस संघर्ष में अमेरिकी सहयोगी नेटवर्क लाभ के बजाय एक बोझ साबित हुआ है। जैसा कि राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने खुद भी माना है कि फारस की खाड़ी और पश्चिम एशिया के अमेरिकी ठिकानों पर ईरान ने जिस तेजी व प्रभावी तरीके से पलटवार किया, वह आश्चर्यजनक था। जबकि, ये ठिकाने सामरिक कार्रवाइयों के लिए बेहद अहम माने जाते थे। उपग्रह से मिली तस्वीरें बताती हैं कि पांच देशों में स्थित सात अमेरिकी ठिकानों पर 25 जगहों पर हमले हुए, जिनसे चेतावनी रडार, रसद भवन, ईंधन भंडारण कंटेनर आदि को नुकसान पहुंचा। पश्चिम एशिया में अमेरिका के सहयोगी देशों और उनके महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचों पर ईरानी पलटवार से यही एहसास हुआ कि इस जंग में 'दोनों का विनाश' तय है। यह ऐसा तथ्य है, जिसे अमेरिका के प्रखर राष्ट्रवादी भी नजरअंदाज नहीं कर सकते। यही कारण है कि जब ईरान के 'साउथ पार्स' गैस क्षेत्र पर इजरायली हमले के जवाब में तेहरान ने खाड़ी क्षेत्र के ऊर्जा केंद्रों पर हमले किए, तो राष्ट्रपति ट्रंप फौरन कदम पीछे खींचने को मजबूर हुए।

अपनी कुशल सैन्य रणनीति व तकनीकी उपलब्धियों के बूते ईरान ने इस कदर मजबूत प्रतिरोधी क्षमता हासिल की है। ईरान को नाटो और अमेरिकी सेना के चश्म से देखा गया, जिनको अलग-अलग भू- रणनीतिक उद्देश्यों के लिए विकसित किया गया है। जबकि, सीमित संसाधनों वाले एक स्वतंत्र देश होने के नाते ईरान ने अपनी भू-राजनीतिक जरूरत के अनुसार सैन्य रणनीति विकसित की है। उसने ऐसे हथियारों पर मेहनत की, जो दुश्मन के स्रोत पर पलटवार करने में सक्षम हो। ये हथियार निस्संदेह दशकों में बने मिसाइल व ड्रोन के उन्नत भंडार थे, जो न सिर्फ हवाई बमबारी से बचने

में सक्षम थे, बल्कि अमेरिकी इजरायली रक्षा कवच को आसानी से भेद सकते थे। हालांकि, उसकी यह रणनीति कोई छिपा रहस्य नहीं था। पिछले संघर्ष में उसने इसका कुछ हद तक प्रदर्शन भी किया था।

अनवरत बमबारी के बावजूद अमेरिका इस बार ईरान की सैन्य ताकत को कमजोर करने या उसकी राजनीतिक व्यवस्था को तोड़ पाने में विफल रहा है। युद्ध के शुरुआती चरण में जिन उद्देश्यों का जिक्र व्हाइट हाउस और पेंटागन ने किया था, वह अब तीन हफ्तों के बाद हास्यास्पद ही लग रहे हैं। अब अमेरिका इस जंग के दुष्परिणामों से निपटने में अधिक व्यस्त है, जैसे- घटता घरेलू समर्थन, वैश्विक आर्थिक अस्थिरता का खतरा, ऊर्जा बाजार को लगने वाला झटका और लंबी सैन्य कार्रवाई के लिए जरूरी लॉजिस्टिक मदद।

विश्वसनीय रिपोर्टों से पता चलता है कि अमेरिका ने कई बार युद्धविराम का प्रस्ताव रखा है। ईरानी विदेश मंत्री ने भी सार्वजनिक तौर पर ऐसी रिपोटों की पुष्टि की है। हालांकि, वाशिंगटन अब भी इस युद्ध को एक ऐसे समझौते के साथ समाप्त करना चाहता है, जिससे उसके क्षेत्रीय दबदबे में कोई बड़ी कमी या उसकी सैन्य उपस्थिति पर आंच न आए। दूसरी ओर, ईरान कहीं अधिक स्थायी शांति का पक्षधर है और क्षेत्रीय सुरक्षा ढांचे में इस कदर बदलाव चाहता है, ताकि उसके सुरक्षा हितों को पर्याप्त महत्व मिले। जाहिर है, दोनों पक्ष बिल्कुल विपरीत ध्रुव पर खड़े हैं और तीसरे पक्ष की मध्यस्थता के बिना उनमें सहमति बनना करीब-करीब नामुमकिन है । जैसे-जैसे युद्ध आगे बढ़ेगा, अमेरिका व उसके मित्र राष्ट्रों को होने वाले नुकसान अधिक स्पष्ट होते जाएंगे, जिसके कारण वाशिंगटन एक गंभीर शांति- वार्ता को लेकर फिर से अपनी राय बना सकता है।

कुल मिलाकर, अमेरिका की घरेलू राजनीति से इस युद्ध का भविष्य जुड़ा हुआ है। यह स्थिति इस जंग को और अधिक अनिश्चित बना रही है, क्योंकि तर्कसंगत राष्ट्रीय सोच उन भू-राजनीतिक विचारों से प्रभावित हो सकती है, जो पश्चिम एशिया में 'अनवरत युद्ध' की तरफदारी करते हैं।